वीर संवत् २४९२, माघ शुक्ल ५, बुधवार
दि. २६-१-१९६६, ढाल-२, गाथा ७ से १२ प्रवचन नं.-९

यह 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' (चलती है।) उसमें दूसरी ढाल की सातवीं गाथा का अन्तिम थोड़ा-सा बाकी है। अन्त में अज्ञान की व्याख्या है न ? अनादि से मिथ्यादर्शन सहित अगृहीत मिथ्यादर्शन कहा है न ? सात तत्त्व की भूल कहकर, अब यह मिथ्याज्ञान उसके साथ बताते हैं। जीव, पाँच द्रव्यों से जिसका उपयोग स्वरूप अत्यन्त भिन्न है - ऐसा न जानकर पर के कारण मैं हूँ, ऐसा अन्तर में चिदानन्द ज्ञानानन्द के स्वभाव को भूल-शरीर, मन, वाणी, राग से मैं हूँ - ऐसी मान्यता, यह जीव की भूल, यह मिथ्याश्रद्धा अनादि की अगृहीत निसर्ग से है। कुछ समझ में आया ?

जीव, पाँच द्रव्यों से उसकी चाल सर्वथा भिन्न है - ऐसा आया था न ? ज्ञानस्वरूप, चिदानन्द स्वरूप उसका है, वह तो उपयोग जानने-देखनेवाला शक्ति और पर्याय, उसकी वह है। ऐसा न मानकर दूसरे पदार्थ के संग से मैं हूँ - ऐसे अपने उपादान में मानना, उसे जीव की अगृहीत मिथ्यादर्शन की भूल कहा जाता है, जो कि अनादि की - अगृहीत, किसी के उपदेश बिना (ग्रहण की हुई है), उसे अगृहीत, जीव की भूल कहते हैं।

अजीव की भूल - शरीर आदि उत्पन्न हो तो मैं उत्पन्न हुआ हूँ। यह पर के क्रिया आदि में मेरा अधिकारपना है - ऐसे अजीवतत्त्व के उपादान की स्वतन्त्र पर्याय में आत्मा ऐसा माने कि यह मुझसे है, उसे अजीवतत्त्व की भूल कहा जाता है। यह अगृहीत मिथ्यादर्शन का अजीवतत्त्व की भूल का स्वरूप है। कुछ समझ में आया ?

आस्रव - जो आत्मा में पुण्य और पाप के भाव दुःखदायक है, आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं, उन्हें यह प्रेम से आकुलता का सेवन करे, प्रेम से उनकी प्रवृत्ति की, पुण्य पाप के भाव की रुचि रखे... समझ में आया कुछ ? उसे आस्रवतत्त्व की अनादि की अगृहीत मिथ्याश्रद्धा कहा

जाता है। समझ में आया ?

बन्ध की भूल - अनुकूल सामग्री मुझे ठीक पड़ती है; प्रतिकूल, वह अठीक पड़ती है। बन्ध के फलस्वरूप से प्राप्त सामग्री, यह सब बन्ध का फल यह मुझे अनुकूल - ठीक है, प्रतिकूल ठीक नहीं है - ऐसी जो मान्यता है, उसे बन्धतत्त्व की भूल है क्योंकि वह बन्ध स्वयं ही प्रतिकूल-अनुकूल संयोग का कारण एक भी हितकर नहीं है। ऐसे साधन होवे तो मुझे ठीक; ऐसे साधन होवे तो मुझे ठीक नहीं - ऐसी उसे बन्धतत्त्व की अनादि की अगृहीत निसर्गरूपसे - उपदेश के बिना ग्रहण की हुई श्रद्धा है। समझ में आया ?

संवर की इसकी यह भूल है कि आत्मा का ज्ञान और आनन्द... आनन्द, अर्थात् चारित्र, वह आत्मा का ज्ञान और चारित्र, आत्मा को शान्ति देनेवाला है। आत्मा का ज्ञान और आनन्द; आनन्द अर्थात् चारित्र, वह शान्ति देनेवाला (है, तथापि) उसे दुःखदायक मानता है। यह क्या ? आत्मा का फिर ज्ञान और उसमें चारित्र (क्या ?) उसे ज्ञान और वैराग्य को दुःखदेन माने, दुःखदायक माने, उसे संवरतत्त्व की अनादि की - अगृहीत मिथ्यादर्शन की श्रद्धा है। कुछ समझ में आया ?

(निर्जरातत्त्व की भूल) - अपनी शक्ति शुद्ध आनन्दकन्द है। उस शक्ति की प्रगटता न करके, इच्छा को प्रगट करके उसमें सन्तोष मानता है। कुछ समझ में आया ? इच्छा फिर शुभ या अशुभ कोई भी हो; उस इच्छा की प्रवृत्ति मैं जिसे सन्तोष है, उसे शक्ति का निरोध होता है, शक्ति प्रगट नहीं होती और (उसमें) सन्तोष मानता है, वह निर्जरातत्त्व की भूल है। समझ में आया ? एक मोक्ष रहा।

मोक्ष, वह निराकुल परमानन्द का स्वभाव, उसका नाम मोक्ष है। वह मोक्ष इसे नहीं रुचता। यह क्या ? अकेले रहना, नहीं कोई खाने-पीने का साधन, नहीं बोलने का साधन, नहीं कुछ राग-द्वेष के विकल्प या मन का साधन, अकेले (रहने का) ? इस प्रकार जिसे निराकुल आनन्द के मोक्षतत्त्व की प्रीति नहीं है, उसे अनाकुल तत्त्व नहीं रुचता। आकुलता बिना अकेला रहे - यह फिर क्या ? शरीर के बिना आत्मा रहता है ? इन्द्रियों के बिना आत्मा ज्ञान करता है ? ऐसे जिसे अनाकुल तत्त्व मोक्ष की प्रतीति का पता नहीं है, उसे मोक्षतत्त्व की भूल अनादि की अगृहीत, निसर्ग-उपदेश बिना स्वभाव से मानी हुई है। उसे अनाकुल में मोक्ष न मानकर, सर्वथा निवृत्ति हो

जाना, इसका नाम मोक्ष की निवृत्ति को न मानकर प्रवृत्ति को कुछ माने, उसे मोक्षतत्त्व की भूल कहते हैं।

यह 'अगृहीत मिथ्यादर्शन हो...' इस एक शब्द की व्याख्या में सात की संक्षिप्त (व्याख्या) पहले कर दी। समझ में आया ? ऐसा अगृहीत मिथ्यादर्शन जहाँ हो, वहाँ जो कुछ ज्ञान होता है, उसे अगृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं। जो कुछ जानपना-शास्त्र का जानपना हो, दूसरे का जानपना होवे, उस समस्त ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा जाता है। आहा...हा...! जहाँ मूल सातत्तत्त्व की अन्दर की दृष्टि में भूल है, उसका चाहे जितना जानपना, क्षयोपशम ज्ञान हो; उस ज्ञान को, भगवान कहते हैं (कि) हम उसे अगृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं। वह मिथ्याज्ञान भी उपदेश के बिना उसने स्वतः प्रगट किया है। समझ में आया ? उसे निसर्ग मिथ्याज्ञान कहा जाता है। निसर्ग मिथ्याज्ञान कहो या अगृहीत् मिथ्याज्ञान कहो।

अनादि से स्वरूप के साततत्त्व के विवेक की श्रद्धा की अन्तर खबर नहीं होती, उस सहित का जितना जानपना है, उतने को (मिथ्याज्ञान कहते हैं।) देखो ! कहा न ? 'जो कुछ ज्ञान हो...' वह ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान कहा जाता है। वह ज्ञान कैसा है ? 'महान दुःखदाता है।' दुःखदाता है और वह ऐसा मानता है कि इस ज्ञान से मुझे लाभ होगा। अगृहीत मिथ्यादर्शनपूर्वक जिसे अन्तर इस ज्ञान का उघाड़ होता है, उस उघाड़ से वह लाभ मानता है। मैं कुछ बढ़ा-चढ़ा हूँ, मेरी कला है, मुझे आता है - ऐसा जो अन्दर मिथ्याज्ञान का अभिमान महा दुःखदायक है, तथापि उसे लाभदायक मानता है। समझ में आया ?

'**महान दुःखदाता...**' ऐसा कहा है न ? देखो न ! '**सो दुःखदायक अज्ञान जान।**' - ऐसा है न ? '**याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान...**' ऐसा है न ? '**कछुकज्ञान...**' यह शब्द ही इसमें पड़ा है। इससे '**कुछ ज्ञान**' लिखा है। मूल पाठ में ऐसा लिखा है। है न ? '**रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय; याही प्रतीतिजुत कछुकज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।**' लो कुछ समझ में आया ? बहुत संक्षिप्त शब्दो में बहुत भाव भर दिये हैं। गृहस्थाश्रम में भी, इन्होंने शास्त्र के मर्म की बात है, उसे बहुत संक्षेप में कहा है।

भाई ! जिसे अन्दर आत्मा का पक्ष नहीं हुआ है और जिसे अन्दर मैं ऐसी भूल है - प्रवृत्ति की

इच्छा में सन्तोष मानता है, वह प्रवृत्ति-इच्छा करके निर्जरा मानता है। इच्छा से उसमें ज्ञान हुआ, उसे सच्चाज्ञान मानता है, वह ज्ञान अकेला दुःखदायक है। समझ में आया ?

'**वह उपदेशादि बाह्यनिमित्तो के अवलम्बन से नया ग्रहण नहीं किया है; अनादि का...**' यह परालम्बीज्ञान, तत्त्व की श्रद्धा विरुद्ध, परालम्बी पकड़ा हुआ उघाड़, वह उसके कारण प्रगट हुआ है, वह अनादि का है, '**इस कारण उसे अगृहीत (स्वाभाविक निसर्गज) मिथ्याज्ञान कहते हैं।**' तीनों का एक ही अर्थ है। अगृहीत कहो, निसर्ग कहो, स्वाभाविक कहो। देखो ! यह मुद्दे की रकम की बात चलती है। समझ में आया ? जिसने, आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु की अन्तर में विकल्परहित प्रतीति नहीं की, उसका आत्मज्ञान प्रगट नहीं किया और आत्मज्ञान में स्थिरता का चारित्र प्रगट नहीं किया, उसे इस प्रकार के बोल अनादि के हैं। वह संसार में महादुःखदायक है। अब, इसके साथ '**अगृहीत मिथ्याचारित्र (कुचारित्र) का लक्षण**' (कहते हैं।)

अगृहीत मिथ्याचारित्र (कुचारित्र)का लक्षण

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त;
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह।।८।।

अन्वयार्थ :- (जो) जो (विषयनिमें) पांच इन्द्रियोंके विषयों मैं (इत जुत) अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित (प्रवृत्त) प्रवृत्ति करता है (ताको) उसे (मिथ्याचरित्त) अगृहीत मिथ्याचारित्र (जानो) समझो। (यो) इसप्रकार (निसर्ग) अगृहीत (मिथ्यात्वादि) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका [वर्णन किया गया] (अब) अब (जे) जो (गृहीत) गृहीत [मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र] है (तेह) उसे (सुनिये) सुनो।

भावार्थ :- अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के

विषयमें प्रवृत्ति करना उसे अगृहीत मिथ्याचारित्र कहा जाता है। इन तीनों को दुःख का कारण जानकर तत्त्वज्ञान द्वारा उनका त्याग करना चाहिये।।८।।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त;
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह।।८।।

देखो ! क्या कहते हैं ? यह विषय - '**पाँच इन्द्रियों के विषयों में (इन जुत) अगृहीत मिथ्यादर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित...**' ऐसा। पहले सातत्त्वों की भूल कही न ? और उस सहितका जो ज्ञान, उस सहित का ज्ञान और उससहित की विषयों में प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... शुभ अशुभराग की प्रवृत्ति। शुभ-अशुभ राग की प्रवृत्ति दोनों मिथ्याचारित्र है - ऐसा कहते हैं। 'विषय' शब्द से मात्र 'भोगादि' - ऐसा नहीं; जिसे आत्मा का विषय नहीं है, इस कारण उसे मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान में जो अनादिका पड़ा है, उसका जितना झुकाव ऐसे शुभ-अशुभराग में जाता है, वह सब मिथ्याचारित्र है। भाई ! अद्भुत बात, भाई ! कुछ समझ में आया ?

कहते है, उस अगृहीत मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान सहित '**प्रवृत्ति करता है...**' यहाँ वजन 'प्रवृत्ति' पर है। वह मिथ्याश्रद्धा थी, मिथ्याज्ञान था, उसमें शुभ-अशुभ परिणाम किसी भी प्रकार के हों, सब मिथ्याचारित्र है, क्योंकि स्वविषय नहीं आया और पर विषय की श्रद्धा और ज्ञान किया है। उस सम्बन्धित प्रवृत्ति के परिणाम ही, उसका नाम मिथ्याचारित्र कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया ? '**उसे अगृहीत मिथ्याचारित्र समझो।**' प्रवृत्ति, हाँ ! इस प्रकार शुभाशुभ परिणाम की एकत्वबुद्धि है, शुभाशुभ परिणाम का ही ज्ञान और स्वभाव का ज्ञान नहीं और यह शुभाशुभ की प्रवृत्ति, उसे मिथ्याचारित्र कहा जाता है। समझ में आया ?

अब कहते हैं, '**इस प्रकार अगृहीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का (वर्णन किया गया)।**' बहुत सरस वर्णन है। समझ में आया ? इसकी कहाँ सूक्ष्म भूल है, अनादि की, उसके साथ अब गृहीत मिथ्यात्व आदि की बात करते हैं। मिथ्यात्व तो है परन्तु बाह्य

से अब कुदेव-कुगुरु की सेवा करके, आदर, विनय करके उस मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। अगृहीत है, उसके साथ मिथ्यात्व की पुष्टि करे, उसे मिथ्यादर्शन आदि कहा जाता है। '**अब, जो गृहीत (मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र) है, उसे (सुनिये)।**' देखो ! उसे भी यहाँ कहा, '**सुनिये।**' अब, वह सुनो, कहते हैं।

'**भावार्थ :- अगृहीत मिथ्यादर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के विषयों में...**' ऐसा। मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति, '**उसे अगृहीत मिथ्याचारित्र कहा जाता है। इन तीनों को दुःख का कारण जानकर...**' इन तीनों को दुःख का कारण जानकर जीव उनसे वापस हटे और अपने तत्त्वज्ञान को पाये, इसके लिए यह बात कही जाती है। '**तत्त्वज्ञान द्वारा उनका त्याग करना चाहिए।**' देखा ? '**तत्त्वज्ञान द्वारा उनका त्याग करना चाहिए।**' (मैं) ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ, राग, वह (मैं) नहीं हूँ। संवर-निर्जरा मुझे शुद्धरूप है, आनन्ददायक है; पूर्ण निराकुलता मोक्ष, वह सुखरूप है। शुभ-अशुभ, वह बन्ध सब एक ही प्रकार का है, अहितकर है। आस्रव का भाव पुण्य हो या पाप, वह दुःखदायक है; आत्मा आनन्ददायक है। ऐसी अन्तर तत्त्वज्ञान पूर्वक ऐसे तीन बोल का त्याग करना - उसके लिए यह कथन किया गया है। समझ में आया ? आहा...हा...! नौंवी (गाथा।)

गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु के लक्षण

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव;
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर घन अम्बरतैं सनेह।।९।।

गाथा १० (पूर्वार्द्ध)

धारै कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव;

अन्वयार्थ :- (जो) जो (कुगुरु) मिथ्या गुरु की (कुदेव) मिथ्या देव की और (कुधर्म) मिथ्या धर्म की (सेव) सेवा करता है, वह (चिर) अति दीर्घकाल तक

(दर्शनमोह) मिथ्यादर्शन (एव) ही (पोष) पोषता है। (जेह) जो (अन्तर) अन्तरमें (रागादिक) मिथ्यात्व-राग-द्वेष आदि (धरैं) धारण करता है और (बाहर) बाह्यमें (धन अम्बरतैं) धन तथा वस्त्रादिसे (सनेह) प्रेम रखता है; तथा (महत भाव) महात्मापने का भाव (लहि) ग्रहण करके (कुलिंग) मिथ्यावेषों को (धारें) धारण करता है वह (कुगुरु) कुगुरु कहलाता है और वह कुगुरु (जन्मजल) संसाररूपी समुद्र में (उपलनाव) पत्थर की नौका समान है।

भावार्थ :- कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करनेसे दीर्घकाल तक मिथ्यात्व का ही पोषण होता है अर्थात् कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का सेवन ही गृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है।

परिग्रह दो प्रकारका है; एक अंतरंग और दूसरा बहिरंग; मिथ्यात्व, राग-द्वेषादि अंतरंग परिग्रह है और वस्त्र, पात्र, धन, मकानादि बहिरंग परिग्रह हैं। वस्त्रादि सहित होने पर भी अपनेको जिनलिंगधारी मानते हैं वे कुगुरु हैं। 'जिनमार्गमें तीन लिंग तो श्रद्धापूर्वक हैं। एक तो जिनस्वरूप-निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकरूप दसवी-ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावकलिंग और तीसरा आर्यिकाओं का रूप-यह स्त्रियों का लिंग, - इन तीन के अतिरिक्त कोई चौथा लिंग सम्यग्दर्शनरूप नहीं है; इसलिये इन तीनके अतिरिक्त अन्य लिंगो को जो मानता है उसे जिनमत की श्रद्धा नहीं है किन्तु वह मिथ्यादृष्टि है। (दर्शनपाहुड गाथा १८)' इसलिये जो कुलिंग के धारक हैं, मिथ्यात्वादि अंतरंग तथा वस्त्रादि बहिरंग परिग्रह सहित हैं, अपने को मुनि मानते हैं मनाते हैं वे कुगुरु हैं। जिस प्रकार पत्थर की नौका डूब जाती है तथा उसमें बैठने वाले भी डूबते हैं; उसीप्रकार कुगुरु भी स्वयं संसार-समुद्र में डूबते हैं और उनकी वन्दना तथा सेवा-भक्ति करनेवाले भी अनन्त संसारमें डूबते हैं अर्थात् कुगुरु की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, विनय तथा अनुमोदना करनेसे गृहीत मिथ्यात्व का सेवन होता है और उससे जीव अनन्तकाल तक भव-भ्रमण करता है। ।।९।।

'गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु का लक्षण :-'

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव;
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर घन अम्बरतैं सनेह।।९।।

गाथा १० (पूर्वार्द्ध)

धारै कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव;

इसमें इन्होंने जरा डाला है। पहले विषय में प्रवृत्ति लिखी है न ? उसमें इन्होंने चित्र रखा है। यह विषय में प्रवृत्ति आयी न ? मिथ्याचारित्र। अपने नये में निकाल दिया है, चित्र नहीं डाला। इसमें जरा डाला है। उसका अर्थ यह है कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के विषयोंमें स्पर्श लिया है। वैसे भले अन्धा लिया है। साधारण लकड़ी है। स्पर्श कर ऐसे देखता है न स्पर्श द्वारा। यह क्या चीज है ? उसमें एकाकार हो जाता है, ऐसा। स्पर्श को देखने पर, स्पर्शता एकाकार हो जाता है यह ? एक प्रति में है। इसमें है, देखो ! है ?

एक प्रति में है। इसमें है, देखो ! है ?

मुमुक्षु :- युवक को स्पर्शकर चलता है।

उत्तर :- हाँ, स्पर्शकर चलता है और वह सब स्पर्शता जाता है। एकाकार...यह स्पर्श की इन्द्रिय के विषय में एकाकार हो जाता है, वह मिथ्याचारित्र, मिथ्यादर्शन-ज्ञान सहित है। फिर एक रसवाला लिया है। ऐसे खड़ा है, देखो ! खाता है, चाटता है। है ? ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं होगी। है ? चाटता है। ऐसे रास्ते में कितने ही आलू नहीं खाते ? ऐसे चूसते होते है।

मुमुक्षु :- 'मुम्बई' में बहुत होता है।

उत्तर :- हाँ, इसलिए ऐसा बनाया है। उसमें निकाल दिया है। रास्ते में ऐसा नागरबेल का पान खाता होता है। वे चढ़ते जाएँ और ऐसे चबाते जाए न... रस। रस एकाकार रस के अन्दर। सात तत्त्व की मिथ्याश्रद्धापूर्वक, मिथ्याज्ञान, उस कला का अभिमान और उसके साथ यह इन्द्रियों के विषयों की प्रवृत्ति। समझ में आया ? और एक नाक। देखो ? हाथ में गज़रा रखा है।

गजरा है, गजरा। राजकोट में बहुत घूमते है न वे ? क्या कहलाता है वह ? घोड़ा का, घोड़ा का रेसकोर्स। उसमें फिरते होते हैं सवेरे; बहुतो के हाथ में फूल होते हैं। ऐसे करते जाते हैं और घूमते जाते हैं। हैं ? मैने रास्ते में बहुत देखे हैं। रास्ते में से फूल तोड़ते जाते हैं। जब घूमने जाते हैं, (तब) रास्ते में फूल होते है न ? (एक मुमुक्षु के) घर में फूल है। पीछे से बाहर निकले होते हैं। रास्ते में निकले, तब फूल तोड़ते जाते हैं और सूँघते-सूँघते घूमते जाते हैं। एकाकार, मानों दूसरा कोई है ही नहीं - ऐसी प्रवृत्ति में एकाकार (हैं)। कहते हैं कि, मिथ्याश्रद्धा सहित के ऐसे ऐकाकार को मिथ्याचारित्र कहते हैं।

फिर आँख का लिया है। है न ? ऐसे... आँख से भलीभाँति देखे। ऐसे एकाकार दिखता है, देखो यह ! है ? प्राकृतिक सीन.. देखने के लिए तत्पर हो गया है। प्राकृतिक सरोवर तो यहाँ है, अन्दर पड़ा है। उसे नहीं देखकर दुनिया के रूप को देखने में तल्लीन हो जाता है, उसे मिथ्याचारित्र कहते हैं। और शब्द... शब्द। वह वाजिंत्र पड़ा है, देखो ! रेड़ियो... तब रेड़ियो कहाँ था ? परन्तु यह तो इन्होंने दृष्टान्त दिया है। रेड़ियो..बेड़ियों, देखो न ! घर-घर में रड़ियो रखते हैं... बड़े-बड़े... आहा...! तल्लीन (हो जाता है।) बाई राँधती, राँधती रोटी बनाती हो, तब रेड़ियो बजाती है। रोटी बनाती जाती है और रेड़ियो सुनती जाती है। अभी तो इतना रस पड़ा है आहा...हा...! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ज्ञान बढ़ता है न ?

उत्तर :- धूल में बढ़ता नहीं ज्ञान। एकाकार हो गया है, उसमें आत्मा कहाँ रहा ? यह क्या करता हूँ ? उसका कुछ भान नहीं होता। वहाँ वे मास्टर कहते थे, (मास्टर) नहीं कहते थे ? वह 'महम्मद' कौन ? उन पाँच विषय का नहीं ? बेगड़ो ! वह कहता। कैसा ? 'महम्मद बेगडो।' पाँच इन्द्रियों के विषयों मे तल्लीन वर्ते। खाता हो, वैश्या नाचती हो, फूल के पैड़ में बैठा हो, चारों तरफ एकसाथ पाँच इन्द्रियों के विषय। धूल में भी एक साथ विषय नहीं लिये जाते। वह मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान सहित शुभाशुभ परिणाम में प्रवर्तता है। यह तो साधारणरूप से अशुभ का दृष्टान्त दिया है, परन्तु शुभाशुभ प्रवृत्ति में तल्लीनता (होती है) उसे मिथ्याचारित्र अनादि का - अगृहित कहा जाता है।

अब, यहाँ तो कहते हैं, मिथ्यादर्शन। गृहीत (अर्थात्) नया पकड़ा हुआ; जन्मने के बाद ऐसे अगृहीत मिथ्यात्व सहित। जिसे गृहीत मिथ्यात्व होता है, उसे अगृहीत तो होता ही है। अगृहीत हो और गृहीत किसी को न भी हो। समझ में आया ? परन्तु जिसे गृहीत हो, उसे अगृहीत मिथ्यात्व तो होता ही है। नौवे ग्रैवेयक में अनन्त बार गया, उसने गृहीत मिथ्यात्व छोड़ा था, अगृहीत नहीं छोड़ा था। अनादि (से) राग से धर्म और संवर, वह दूसरी चीज़, क्या चीज़, उसका कुछ भान नहीं अन्तर में नौ ग्रैवेयक गया। महामुनि.. ऐसा दिगम्बर मुनि (हुआ), हजारों रानियों का त्याग (किया) - ऐसी स्थिति में भी उसने अन्तर में गहरे-गहरे राग को अपना स्वरूप मानकर, देहादिक की क्रिया को अपनी मानकर, अन्दर में आत्मा की शान्ति को दुःखदायक माना। गहरे-गहरे उसकी तत्त्व की श्रद्धा में भूल होती है। समझ में आया ? इन मिथ्या गुरु की, मिथ्या देव की, मिथ्या धर्म की सेवा करे, उसे यह अगृहीत मिथ्यात्व पुष्टि को प्राप्त होता है। है न ? देखो न !

'**सेवे, पोषै चिर दर्शनमोह एव;...**' मिथ्यागुरु, मिध्यादेव, मिथ्या धर्म की सेवा, '**अति दीर्घकाल तक मिथ्यादर्शन ही पोषता है।**' लो ! '**जो अन्तर में (रागादिक) मिथ्यात्व-राग-द्वेष आदि धारणा करते हैं...**' पाठ में इतना है - '**अंतर रागादिक धरैं जेह...**' इसका अर्थ कि एकत्वबुद्धि। मिथ्यात्व सहित राग को अपना मानकर ऐसे मिथ्यादृष्टि सहित, मोह सहित जो रागादि धरतें हैं, (वे) मिथ्यात्व आदि धारण करते हैं।

'**बाह्य में धन तथा वस्त्रादि से प्रेम रखता है...**' अन्तर में विकार के प्रति प्रेम है; बाह्य में बाहर की वस्तु के प्रति प्रेम है। समझ में आया ? धन और वस्त्र। '**(महतभाव) महात्मापने का भाव ग्रहण करके मिथ्या वेषों को धारण करता है...**' ऐसे वेष हो तो मेरी महिमा बढ़े, बडप्पन बढ़े, गुरु गिना जाऊँ, साधु गिना जाऊँ, अधिक पद में गिना जाऊँ - ऐसे कारण से अनेक प्रकार के वेष धारण करते हैं, वे सब कुगुरु के लक्षण हैं। कुछ समझ में आया ? देखो ! यह क्या लिखा है ? देखो न ! कितना लिखा है ! तुम्हें तो यह पहले से मिला है, परन्तु विचार कहाँ किया है ? ना करता है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि धारण करे और उनमें प्रेम करे, '**महात्मापने**

का भाव ग्रहण करके...' ऐसा कहना है। देखा न ? '**धारैं कुलिंग लहि महत भाव...**' इसका अर्थ यह कि '**धारे कुलिंग लहि महतभाव...**' वेष ऐसे बदले और माने कि इसमें बड़प्पन कहलाता है। समझ में आया ? पण्डितों में भी कितनों को ही ऐसा होता है। ऐसे वस्त्र-वस्त्र ऐसे होते हैं न ? लाल क्या कहलाते हैं ? वे भगवा-बगवा होते है न ? कुर्ता ! ऐसा लाल रंग आता है न ? ऐसा गेरूआ वस्त्र होवे तो उसका बड़प्पन इसे कहा जाता है। अन्दर में कोई दम नहीं होता। यह पण्डित है। ऐसी ज़रा टोपी लाल हो, सिर पर लगाई हो, होवे भले गृहस्थ। भगवा नहीं गोरे रंग जैसी। तो दिखता है कि यह त्याग है अथवा यह पण्डित है अथवा दूसरों की अपेक्षा दूसरे प्रकार का दिखता है - पृथक् लगता है। इसके लिये महंतता के लिये ऐसा वेष पहिनता है, कहते हैं, वे सब कुगुरु हैं। आहा...हा...! समझ में आया ?

'**महात्मापने का भाव ग्रहण करके मिथ्या वेषों को धारण करता है, वह कुगुरु (कहलाता है और वह कुगुरु) (जन्मजल) संसाररूपी समुद्र में...**' जन्मजल (अर्थात्) जन्मरूपी संसार का समुद्र, उसमें '**(उपलनाव)...**' है। वह पत्थर की नाव है। उपल अर्थात् पत्थर। पत्थर की नाव में बैठे, वह पत्थर भी डूबता है और नाव भी डूबती है और नाव मैं बैठनेवाले भी डूबते हैं। कहो, समझ में आया ? जिसे, आत्मा राग रहित शुद्ध चैतन्य क्या है ? (उसका) भान नही है और पुण्य-पाप में धर्म मानता है, ऐसी एकत्वबुद्धि जिसकी है - ऐसे कुगुरु को माननेवाला पत्थर की नाव में बैठा है - ऐसा कहते हैं।

भाई ! जिसे आत्मज्ञान, आत्मदर्शन का भान नहीं है (और) अकेली बाह्यक्रिया तथा राग में धर्म मान बैठा है और इसकी महत्ता उसे लगती है कि हम कुछ महन्त है, हम अधिक है, त्यागादिक में दूसरों से अलग पड़नेवाले हम हैं ऐसा मानकर वेष आदि धारण किया, उसे यहाँ कुगुरु कहा गया है। उस कुगुरु को माननेवाले कैसे हैं ? - यह कहेंगे।

'**भावार्थ :- कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से दीर्घकाल तक मिथ्यात्व का ही पोषण होता है, अर्थात् कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का सेवन ही गृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है।**' यह कुगुरु की सेवा, कुदेव की सेवा... समझ में आया ? या कुशास्त्र

की सेवा या कुधर्म की सेवा, वह अनादि अगृहीत मिथ्यादर्शन को पुष्ट करनेवाले हैं। कहो, समझ में आया ? इसमें ? श्रद्धा-ज्ञान की कींमत नहीं होती, लोगों को बाह्यत्याग की कींमत है। वस्तु अन्तरदृष्टि में कितना अन्तर है ? (-इसका पता नहीं है।) रागादि को धर्म माने, व्यवहार को धर्म माने, परमार्थ धर्म माने, और निमित्त में अपनी, शरीरादिक की क्रिया होती है, उसे अपना कार्य माने, वे सब अन्तर में मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसे मिथ्यादृष्टि को गुरूप से स्वीकार करना; उस कुगुरु को गुरु मानना - यह अनादि का अगृहीत मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टि है। यह मिथ्यात्व मैं वृद्धि होती है - ऐसा कहते हैं। कहो, भाई !

मुमुक्षु :- महावीर का नाम तो लेते है।

उत्तर :- हमारे सेठ ऐसे हैं। जरा धीरे-धीरे (बोलते हैं।) 'महावीर' का नाम नहीं लेते। नाम (लेना) उसे कहा जाता है कि जिसने वीर भगवान ने वीरता का स्वभाव प्रगट किया और वीरता - चैतन्य के वीर्य की प्रगट दशा करे, उसे 'महावीर' कहा जाता है और उनका नाम स्मरे ऐसी दृष्टि (होती है), उसने महावीर का स्मरण किया कहा जाता है। (जिसे ऐसा नहीं हैं), वह राग का स्मरण करता है। एक बार कहा नहीं था ? 'समन्तभद्राचार्य' भगवान को वन्दन करते हुए कहते हैं है नाथ ! अभव्य आपको वन्दन नहीं करता। वह किस प्रकार नहीं करता ? आप वीतराग स्वरूप हो, आपकी दशा रागरहित है। - ऐसी दशा उसे (नहीं होती) और राग की रुचिवाला आपको नमस्कार करे, वह (वस्तुतः) नमस्कार करता ही नहीं। आत्मा वीतरागस्वभाव है। ज्ञानस्वरूप आत्मा है, जिसमें विकल्प की गन्ध नहीं - ऐसी दृष्टि नहीं करता, वह वीतराग को नमस्कार करता ही नहीं; वह तो राग को, व्यवहार को, विकल्प को और मेल को नमता है, वह निर्मल को नमन नहीं करता, सूक्ष्म बात है। भाई !

मुमुक्षु :- यह तो नाम लेने का है।

उत्तर :- वह नाम ही नहीं लेता, यही कहा; नाम ही नहीं लेता। नाम का अर्थ - जैसी उनकी दशा है, उसमें नमें, ढले उसे नाम लेना कहा जाता है, ऐसा है। नाम अर्थात् नमना, ढलना। समझ में आया ? उसे कहाँ उस तोता को पता है ? मूँगफली का दाना दे - बोल तोता ! राम। (तोता), राम-राम (बोले) यह कुछ पता नहीं कि यह राम नहीं है। ऐसे बोलो महावीर... महावीर...

(बोले) परन्तु महावीर कैसे हैं ? - उसका पता नहीं है। इसलिए वास्तव में वह महावीर का नाम लेता ही नहीं। समझ में आया ? जिनकी वीतरागता... अन्तरदृष्टि सर्वज्ञता प्रगटी है, उसकी रुचिसहित होवे, उसके चार निक्षेपों का ज्ञान उसे सच्चा कहलाता है। जिसे उसकी रुचि नहीं, उसे एक भी निक्षेप सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

अब, कहते हैं - '**परिग्रह दो प्रकार का है, एक अन्तरंग और दूसरा बहिरंग...**' रागादि कहा था न ? '**अन्तर रागादिक धरैं जेह...**' और बहिरंग '**धन अम्बर तैं सनेह -**' उसकी व्याख्या करते हैं। अन्तरंग बड़ा परिग्रह तो मिथ्यात्व है। यह शुभाशुभभाव की पकड़ और उसकी प्रवृत्ति में लाभ (की) मान्यता, (यह) महा मिथ्यात्व की पकड़ है। समझ में आया कुछ ? भगवान आत्मा अत्यन्त निर्विकल्प निवृत्तस्वरूप है। उसकी प्रतीति न करके जो विकल्प आदि की शुभभाव की प्रवृत्ति में लाभ मानना, वह महामिथ्यात्व का परिग्रह है। उसने मिथ्यात्व को पकड़ा है। वह बाह्य से अत्यन्त त्यागी हो गया हो तो भी अन्दर में मिथ्यात्व का परिग्रह पड़ा है, उसे महा परिग्रहवन्त कहा जाता है। समझ में आया ?

निष्परिग्रह - ऐसा भगवान आत्मा, उसे न पकड़ कर रागादि के विकल्प को पकड़ कर, वह मुझे लाभदायक है - यही मिथ्यात्वभाव का परिग्रह है। समझ में आया ? बाहर में लँगोटी न हो, नग्न हो परन्तु जिसे यह मिथ्यात्व परिग्रह पड़ा है, (उसे) महा परिग्रहवन्त कहा जाता है। समझ में आया ? 'प्रवचनसार' में थोड़ा आ गया, नहीं ? कितनी वीं (गाथा) ? २३६ गाथा, नहीं ? कायक्लेश, वह सब काय क्लेश है। काया और कषाय, कषाय और काया - ये दो; इसलिए लिया न ? राग को अपना मानता है और शरीरादि की क्रिया मुझसे होती है। यह कषाय और काया दो (हुए।) उसे आत्मा का ज्ञान नहीं है और कुछ भी, जरा भी त्याग नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया ? (यह) अन्तरंग परिग्रह (हुआ।)

'**और वस्त्र, पात्र, धन, मकानादि बहिरंग परिग्रह है...**' अन्तरंग परिग्रह के त्याग सहित बाह्य परिग्रह वस्त्रादि का त्याग न होवे तो उसे मुनिपना सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया कुछ ? '**वस्त्रादि सहित होने पर भी अपने को जिनलिंग धारी मानते हैं...**' जिनलिंग अर्थात् मुनिपना अथवा उत्कृष्ट श्रावकपना अथवा श्राविका, आर्यिकापना - ऐसा जिनलिंगधारी

मानते हैं - ऐसे जिनलिंग तीन है, परन्तु ऐसे स्वभाव के भान बिना वस्त्रादि सहित होने पर भी जिनलिंगधारी - हम जिन-लिंग के धारक हैं। (- ऐसा मानते हैं), वे कुगुरु हैं।

'**जिनमार्ग में तीन लिंग तो श्रद्धापूर्वक हैं...**' धर्मी के लिंगरूप से, हाँ ! '**एक तो जिनस्वरूप-निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनिलिंग...**' होता है। जैनदर्शन में मुनिलिंग - आत्मदर्शनसहित दिगम्बरदशा, यह मूल लिंग होता है। '**दूसरा उत्कृष्ट श्रावकरूप दसवीं-ग्यारहवीं प्रतिमाधारक श्रावक लिंग...**' होता है (लंगोटी) श्रावक का लिंग होता है। धर्म के लिंग रूप से - वेषरूप से तीन ही वेष हैं। '**तीसरा आर्योकाओं का रूप - यह स्त्रियों का लिंग...**' होता है। आर्यिका अथवा क्षुल्लिका होती है न ? एक वस्त्र आदि (होता है।) '**इन तीन के अतिरिक्त कोई चौथा लिंग सम्यग्दर्शनस्वरूप नहीं है।**' सम्यग्दर्शन में जिनलिंग के तीन प्रकार में वेष की गिनती में तीन लिंग के अतिरिक्त दूसरा वेष नहीं है। समझ में आया कुछ ?

'**इसलिए इन तीन लिंगो के अतिरिक्त अन्य लिंगो को जो मानता है...**' अन्य लिंगो में जो ऐसा मुनिपना या आर्यिकापना आदि मानता है, '**उसे जिनमत की श्रद्धा नहीं है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि है।**' सूक्ष्मबात, अद्भूत बात, भाई ! 'दर्शनपाहुड़' १८वीं गाथा में 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ने कहा है। '**इसलिए जो कुलिंग के धारक हैं, मिथ्यात्वादि अन्तरंग...**' परिग्रहवाले हैं; '**वस्त्रादि बहिरंग परिग्रहसहित है, अपने को मुनि मानते हैं...**' समझ में आया ?

उन लोगों के शास्त्रों में ऐसा लेख है, साधु आहार लेने जाए (तब) दस पात्र दे, कोई कम्बल दे तो ले लेना। दस कम्बल, दश पात्र, दश .... ऐसा 'भगवतीसूत्र' में लेख है। कौन जाने क्या लिखा है और क्या किया है ? कुछ पता (नहीं पड़ता)। इतना उठाकर (चलें इसलिए) वह मजदूर जेसा लगता है। दस कम्बल, या दस पात्र.. और भगवान के नाम से चढ़ा दिया। 'भगवतीसूत्र' - भगवान ने कहा है, लो ! बड़ा बड़िया में बड़िया वह कहलाता है। यह जब पढ़ते है, तब एक एक - एक रुपया देते है, होता है या नहीं ? तुम्हारे तो कहाँ था ऐसा पैसा-बैसा खर्च करने का ? है ? उन लोगों को ऐसा होता है। 'भगवती(सुत्र)' पढ़े तक चावल के बड़े स्वस्तिक

पूरते हैं। भाई ! देखा है या नहीं ? उसमें यह लिखा है, हाँ ! आहा...हा...! एक बार पढ़ा, कहा, यह क्या करते हैं ? यह भगवान के नाम से दश-दश पात्र (रखते हैं), एक पात्र स्वयं रखे और नौ देवे आचार्यों को। दश ..., एक स्वयं को रखने की और बाकी की उन्हें दे।, दश कम्बल में से एक स्वयं रखे और नौ उन्हें दे। यह क्या, यह फिर क्या ? साथ में बहुत साधु हों, किसी को चाहिए हो तो..।

ऐसे वस्त्रसहित और ऐसे परिग्रहवाले को मुनि मानना, यह मुनि माननेवाले को मिथ्यादर्शन लगता है। गृहीत मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ? गृहीत अर्थात् अगृहीत तो है, तदुपरान्त उसे यह गृहीत मिथ्यादर्शन उसे लगता है। मुनिलिंगरूप से दूसरा लिंग नहीं हो सकता। मुनि माने और वस्त्र-पात्र आदि रखे और अभ्यन्तर मिथ्यात्व हो; एकदम कुगुरु है। उसे मानने से गृहीत मिथ्यात्व का पोषण होता है। भाई ! पैर पड़ना चाहिए या फिर सौगन्ध करना ? है ? हाथधुनन भाई चलता है। अखबार में आता है। कल या परसों नहीं लिया ? दिल्ली में सौगन्ध (शपत लिया)। फिर सबने राष्ट्रपति ने और इन्दिराने शपत ली, ऐसे हाथ पकड़ कर। हाथधुनन फिर यह नयी भाषा लगती है। हाथधुनन... हाथधुनन। (हाथ) पकड़ कर ऐसे... ऐसे। ओ..हो..हो..! तुम बड़े प्रधान। इसी प्रकार इस गुरु को न माने (और) गुरु आया होवे तो इसे क्या करना ? है ? परसो ही थोड़ा यहाँ बना था। समझ में आया ? आहा...हा...! परन्तु वह वन्दन ही नहीं है। वह तो जैसे एक प्रेमी व्यक्ति मिले और सम्बन्ध हो वह करे। (उसे ऐसे कि) पैर पड़ेगा, (इसने) हाथ किया। ओफ्फ....! यह तो बदल गया। वह नीचे ऐसे ऐसे करने गया, (उसे ऐसा कि) पैर पड़ेगा। उसने हाथ पकड़ा। आहा...हा...!

कहते हैं, बाह्य मैं परिग्रह - वस्त्र-पात्र (रखे और) अभ्यन्तर स्वयं मिथ्यात्व-रागादि का सेवन करे, उन्हें गुरु मानना - ये हमारे तारण-तरण है, ये साधु हैं - ऐसा मानना, उसे मिथ्यादर्शन गृहीत का, अगृहीत के उपरान्त बड़ा पाप लगता है। समझ में आया ? परन्तु तब अब किसमें करना क्या ? रहना पानी में और मछली के साथ वैर ? ऐसी बातें करते है न लोग ? सबके साथ रहना और सबसे वैर करना क्या ? किसके साथ वैर ? सुन न। आत्मा की सच्ची श्रद्धा हो, वह ऐसे कुगुरु को नहीं मानता। दुनिया में चाहे जो होवे। पलटा होवे तो उसके घर रहा, वह तो पलटा होना होना होगा। दुनिया से डरकर सत् को नहीं बेचें, भाई ! क्या हो, इसमें ? क्या कहा समझ में आया ?

भगवान के मार्ग में तो, आत्मा में राग का कण हो और धर्म-परमार्थ धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि है और फिर मिथ्यादर्शन सहित वस्त्र रखकर मुनिपना माने... समझ में आया ? जैनदर्शन में वस्त्रधारी मुनि तीन काल में नहीं हो सकते और अकेला नग्न हो, परन्तु अन्दर में श्रद्धा, भान न हो - यह क्रिया मैंने की, जड़ की क्रिया मेरी, इन महाव्रत के परिणाम (को) धर्म (माने), वह भी मिथ्यादृष्टि है। उसे वास्तव में सच्चा लिंग/भावलिंग नहीं है, इसलिए बाह्य द्रव्यलिंग में भी यथार्थपना नहीं हैं। आहा...हा...!

'**जिस प्रकार पत्थर की नौका स्वयं डूब जाती है और उसमें बैठनेवाले भी डूबते हैं; उसी प्रकार कुगुरुभी स्वयं संसार-समुद्र में डूबते हैं और उनकी वन्दना, सेवा...**' उन्हें वन्दन करनेवाले, उनकी सेवा करनेवाले, '**भक्ति करनेवाले भी अनन्त संसार में डूबते हैं, अर्थात् कुगुरुकी श्रद्धा, भक्ति, पूजा, विनय...**' किन्तु कठिन बहुत, भाई ! दुनिया से अकेला अलग-थलग हो जाए, है ? किसी के साथ मेल नहीं, किसी के साथ मिलनसार नहीं, ऐसा मानते हैं। लो !

मुमुक्षु :- पुरानी पहिचान होवे तो क्या करना ?

उत्तर :- वह (इन भाई को) पूछो। पुराने व्यक्ति और वहाँ के बड़े हैं। पुरानी पहिचान होवे तो उसमें क्या करना ? क्या होना ? निडर होना। लो ! भाई यह कहते हैं। सत्य बात होवे, उसमें दूसरा क्या हो सकता है ? इसके लिए कोई बालसखा हो तो कोई ज़हर खाकर बालसखापना रखा जाए ? बालसखा है न, तू साथ में थोड़ा खा ले, अपन बालसखा है न ? - ऐसा कहीं पारिवारिकपना रखा जाता है ? -ऐसा नहीं रखा जाता।

कुगुरु की श्रद्धा, उसकी भक्ति, लौकिक की श्रद्धा बताये और उसमें धर्म माने, उसमें मनावें, वे सब कुगुरु है, उनका विनय, '**अनुमोदन करने से गृहीत मिथ्यात्व का सेवन होता है और उससे जीव अनन्तकाल तक भव-भ्रमण करता है। धारै कुलिंग लाहे महतभाव-**' ऐसा लिया न ? समझे न ? '**धन अम्बर तै सनेह-**' ऐकाकार बुद्धि है - ऐसा कहते हैं।

गाथा १० (उत्तरार्द्ध)

कुदेव (मिथ्यादेव) का स्वरूप

जो राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन;

गाथा ११ (पूर्वार्द्ध)

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव;

अन्वयार्थ :- (जे) जो (राग-द्वेषमलकरि मलीन) रागद्वेषरूपी मैलसे मलिन है और (वनिता) स्त्री (गदादि जुत) गदा आदि सहित (चिह्न चीन) चिह्नों से पहिचाने जाते हैं (ते) वे (कुदेव) झूठे देव हैं, (तिनकी) उन कुदेवों की (जु) जो (शठ) मूर्ख (सेव करत) सेवा करते हैं (तिन) उनका (भवभ्रमण) संसारमें भ्रमण करना (न छेव) नहीं मिटता।

भावार्थ :- जो राग और द्वेषरूपी मैल से मलिन (रागी; द्वषी) हैं और स्त्री, गदा, आभूषण आदि चिह्नों से जिनको पहिचाना जा सकता है वे 'कुदेव' [१] कहे जाते हैं। जो अज्ञानी ऐसे कुदेवों की सेवा (पूजा, भक्ति और विनय) करते हैं वे इस संसार का अन्त नहीं कर सकते अर्थात् अनन्तकाल तक उनका भवभ्रमण नहीं मिटता।।१०।।

अब (बाकी का) गाथा - '**कुदेव (मिथ्यादेव) का स्वरूप।**'

जो राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन;

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव;

'**जो राग-द्वेषरूपी मैल से...**' राग-द्वेष शब्द से मिथ्यादृष्टि ... लेना। समझ में आया ?

---

१. **सुदेव** - अरिहन्त परमेष्टी; **देव** - भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक, **कुदेव**-हरि, हर शीतलादि; **अदेव**-पीपल, तुलसी, लकड़बाबा आदि कल्पितदेव; जो कोई भी सरागी देव-देवी हैं वे वन्दन पूजनके योग्य नहीं हैं।

जिसे मिथ्यादर्शन, अज्ञान है और राग-द्वेष के मैलसहित अन्दर में मलीन है; (जिसे) निर्मलानन्द भगवान आत्मा का भान नहीं है। यहाँ सर्वज्ञपना बतलाना है। भगवान सर्वज्ञ एक समय में तीनल काल-तीन लोक का ज्ञान हो, वे सर्वज्ञदेव कहलाते हैं। समझ में आया ? एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान और निर्मलता अर्थात् वीतरागता। ऐसे वीतराग-विज्ञानघन सर्वज्ञ परमेश्वर, वे देव कहलाते हैं। उनके अतिरिक्त कोई देव माने, दूसरे का राग-द्वेष सहित, अल्पज्ञान; राग-द्वेष सहित मिथ्यादृष्टि, उन्हें देव माने, वह मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ? यह तो दृष्टान्त दिया है।

'**राग-द्वेषरूपी मैल से मलिन है और (वनिता)...**' अर्थात् '**स्त्री तथा (गदादिजुत) गदा आदि सहित चिह्नों से पहिचाने जाते हैं...**' स्त्री बगल में बैठी हो, हाथ में गदा हो, हाथ में माला हो। समझ में आया ? '**(गदादि जुत) गदा आदि सहित चिह्नों से पहिचाने जाते हैं, वे (हैं कुदेव) झूठे देव हैं...**' वे सच्चे देव नहीं है। सच्चे देव तो सर्वज्ञ-वीतराग परमेश्वर है। जिनकी दिव्य ध्वनि में अकेली वीतरागता झरती होती है। समझ में आया ? तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन लोक का ज्ञान, ऐसे ज्ञान के धारक और जिनके साथ वीतरागता तथा परमानन्द की दशा (हो) - ऐसे देव के अतिरिक्त दूसरे को राग-द्वेष की मलिनतावाले को और मिथ्यादर्शनसहित को देव मानना; बाहर मैं वनिता-स्त्री आदि सहित हो (वह) कुदेव है - मिथ्या देव है। उस कुदेव की शेठ-मूर्ख... इसमें होगा अवश्य ? इसमें होगा है, है। वह पैर पड़ता है, देखो ! वह पैर पड़ता है।

कुगुरु-कुदेव-कुधर्म। समझे न ? कोई आरती उतारता है, देखो ! जटा-बटा है और पीछे एक बाबा है। हाथ मैं कुछ है और वह पैर पड़ता है। कुगुरु-कुदेव और कुशास्त्र तीनो रखे हैं, हाँ ! कुधर्म है न वह घोड़ी ? उस पर कुशास्त्र है। कुशास्त्र है न ? पुस्तक है न पुस्तक। वह पत्थर है, वह कुगुरु है - यह इन सबके पैर पड़ता है। ऐसे कुगुरु-कुदेव-कुधर्म। देखो ! एक लड़का वहाँ पैर पड़ता है। समझ में आया ? सवेरे में ऐसे पत्थर... जिसे देव नहीं, जिसे देव का भान नहीं - ऐसे कुदेव की प्रतिमा बनाये और माने, वह भी मिथ्यादेव का सेवन करनेवाले हैं। समझ में आया ? पत्थर होय तो भगवान की मूर्ति है न ? पत्थर है। (वह) अलग बात है।

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग प्रभु है, जिनका विरह होता है। तब स्थापनारूप से धर्मी को ऐसी भक्ति, शुभभाव, वन्दन, विनय आये बिना नहीं रहता, उसे स्थापना निक्षेपरूप से जानता है। जिन नहीं, परन्तु जिन सरीखी प्रतिमा को जानता है। जिन नहीं, स्वयं वीतराग नहीं। निक्षेप में वीतराग की आकृति देखकर स्मरण में आता है कि ऐसे सर्वज्ञ होते हैं, ऐसे स्थिररुप से स्थित हुए वीतराग होते हैं। पूरी दुनिया(में) चाहे जो फेरफार होता हो तो उनके ज्ञान में, वीतरागता में कुछ अन्तर नहीं पड़ता - ऐसे स्मरण के लिए भगवान की प्रतिमा को सम्यग्दृष्टि भी मानता है, पूजता है। शुभभाव है, वह शुभभाव है, उसे मिथ्यात्व नहीं है। समझ में आया ? आप दूसरे के पत्थर को ऐसा कहते हो तो यह पत्थर है परन्तु इस पत्थर की आकृति वीतराग आकृति है। इस पूरी बात में अन्तर है। समझ में आया ?

सब यह लगाते है कि अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व। यह अजीव है, उसे तुम जीव मानते हो - ऐसा कहते हैं... ऐ...ई...! सब सुना तो होगा या नहीं ? क्यों भाई ! भाई ! वह तो अजीव को अजीव ही मानते हैं। यह स्थापना निक्षेप से मानते हैं, उसे कहीं जीव नहीं मानते। इसमें केवली और सर्वज्ञ परमेश्वर साक्षात् हैं - ऐसा इसमें नहीं है। समझ में आया ? मात्र उनकी प्रतिकृति - ऐसे सर्वज्ञ-वीतराग परमेश्वर (होते हैं।) जिनके विरह में ... स्त्री मर जाए तो उसके विरह में स्त्री का फोटो घर में रखते हैं या नहीं ? ऐ...ई...! तुम्हारा 'पोरबन्दर' नहीं उपाश्रय के पास वह कौन...? उसकी पुरानी पत्नी मर गयी थी। घर देखने गये थे तो ऐसा बड़ा फोटो टँगा था। कहा - यह क्या यहाँ ? वे स्थानकवासी कहलाते हैं न ? (वह कहने लगा) - मेरी पत्नी गुजर गयी, उसके प्रति प्रेम है, इसलिए बड़ा फोटो (लगाया है।) बड़ा फोटो, हाँ ! ऐसा कपड़ा ढँका हुआ। उपाश्रय के पास साथ में (मकान था)। कहा, यह क्या ? अरे ! तुम्हे स्त्री का प्रेम है और वह मर गयी तो उसका यह (फोटो) रखते हो और भगवान के प्रति-प्रेम हो और भगवान के फोटो को वन्दन नहीं करना, भगवान का फोटो (प्रतिमा) नहीं मानना, वह अचेतन कहलाये। परन्तु अचेतन से कौन इनकार करता है ? उसे चेतन किसने कहा ? स्थापना निक्षेप से वीतराग की मूर्ति है। सर्वज्ञ परमेश्वर की प्रतिकृति सामने हैं। उसे सम्यग्दृष्टि बहुमान, विनय, भक्ति से पूजा करता है, उसका नाम शुभभाव है; धर्म-परमार्थ धर्म नहीं तथा उसे मानना मिथ्यादर्शन नहीं। बहुत गड़बड़ देखो ! वन्दन करता है, लड़का सवेरे (वन्दन करता है।) और यहाँ देव के वह किये है न,

घोड़े जैसे मुँह... है न ? कुदेव। उसमें लिखा है न ? '**वनिता गदादिजुत चिह्न चीन।**' बड़ी फूल की माला है और हिरण जैसा बड़ा मुँह है। ऐसे देव को देव मानना, वह मिथ्यात्व है। वह देव सच्चा नहीं है। समझ में आया ?

'**मूर्ख सेवा करते हैं, उनका संसार में भ्रमण करना नहीं मिटता।**' ऐसा है न ? उसका चार गति में भटकना नहीं मिटता। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग देव मिले, जिसकी श्रद्धा में सर्वज्ञ परमात्मा रमते हैं। एक समय में तीन काल - तीन लोक का ज्ञान - ऐसे परमेश्वर जिसके ज्ञान में विराजमान होते हैं; समकिती के ज्ञान में परमात्मा विराजते हैं। उनके विरह में प्रतिमा, पूजा आदि होते हैं। मिथ्यादर्शन नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन पूर्वक शुभभाव है।

'**भावार्थ :- जो राग-द्वेषरूपी मैल से मलिन...**' देखो ! '**और स्त्री, गदा, आभूषण, आदि चिह्नों से जिनको पहिचाना जा सकता है...**' स्पष्टरूप से, ऐसा। '**वे कुदेव कहलाते हैं।**' नीचे व्याख्या की है। पूर्व के शास्त्रकार ने, हाँ ! सुदेव - अरिहन्तपरमेष्ठी; सुदेव अर्थात् मानने योग्य परमेश्वर। देव-भवनवासी इत्यादि देव। वे देव अलग और यह देव अलग। वे सुदेव है। सर्वज्ञ परमात्मा सुदेव हैं और भवनपति व्यन्तर आदि तो एक गति के देव है। कुदेव - हरि, हर आदि कुदेव हैं। (जो) वास्तविक देव नहीं, वे कुदेव कहलाते हैं। अदेव। चार नाम अलग दिये हैं, देखा ? सुदेव, देव, कुदेव, अदेव। अदेव (अर्थात्) यह पीपल, तुलसी, लकड़बाबा इत्यादि। लकड़बाबा, यह तो हिन्दुस्तान में होंगे, अपने हैं कोई ? यह पीपल को पान डालकर नहीं करते ? पीपल के फेरे फिरते हैं, मूढ़ है। महिलायें वहाँ बहुत जाती हैं। पीपल को पानी डाले, (मानती है कि) लड़का होगा, धूल। तुलसी को पानी डालकर (मानते हैं कि) यह मेरे देव कहलाते हैं। वह तो एकेन्द्रिय वनस्पति है। लकड़बाबा कुछ होगा अथवा वह लकड़ी का घड़ा हुआ, अथवा वह पाणियारा पर नहीं रखते ? रूई की आँखे और गोबर के काकाबणिया। उसके उपर वे काकाबणिया रखते है, और माने देव। सवेरे पैर पड़े, मूढ़ है, कहते हैं। ऐसे देव को माननेवाले (मूढ़ है।) समझ में आया ?

जो कोई भी सरागी देव-देवी है, वे वन्दन-पूजन के योग्य नहीं है। पैर लगे, घर में... होता है। क्या कहलाता है इसका ? कुलदेव, कुलदेवी। सब मूढ़ता है, कहेत हैं। उसे सच्चे देव का पता

नहीं है। परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि किसी को नहीं मानता। समझ में आया ? दस गाथा हुई।

'**अज्ञानी ऐसे कुदेवों की सेवा, (पूजा, भक्ति और विनय) करते हैं, वे इस संसार का अन्त नहीं कर सकते...**' क्योंकि उसको अन्त नहीं है, जिन्हें मानता है, उसे संसार का अन्त नहीं है और उसका अनुमोदन करे तो इसे मिथ्यात्व का पाप लगता है '**अर्थात् अनन्त काल तक उनका भवभ्रमण नहीं मिटता।**'

गाथा ११ (उत्तरार्ध)
कुधर्म और गृहीत मिथ्यादर्शनका संक्षिप्त लक्षण

रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म;
याकूं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।१२।।

अन्वयार्थ :- (रागादि भावहिंसा) राग-द्वेष आदि भावहिंसा (समेत) सहित तथा (त्रस-थावर) त्रस और स्थावर (मरण खेत) मरण का स्थान (दर्वित) द्रव्यहिंसा (समेत) सहित (जे) जो (क्रिया) क्रियाएँ [हैं] (तिन्हैं) उन्हें (कुधर्म) मिथ्याधर्म (जानहु) जानना चाहिये। (तिन) उनकी (सरधै) श्रद्धा करने से (जीव) आत्मा-प्राणी (लहै अशर्म) दुःख पाते हैं। (याकूं) इस कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका श्रद्धान करनेको (गृहीत मिथ्यात्व) गृहीत मिथ्यादर्शन जानना, (अब गृहीत) अब गृहीत (अज्ञान) मिथ्याज्ञान (जो है) जिसे कहा जाता है उसका वर्णन (सुनो)।

भावार्थ :- जिस धर्म में मिथ्यात्व तथा रागादिरूप भाव-हिंसा और त्रस तथा स्थावर जीवोंके घातरूप द्रव्यहिंसा को धर्म माना जाता है, उसे कुधर्म कहते हैं। जो जीव उस कुधर्म की श्रद्धा करता है, वह दुःख प्राप्त करता है। ऐसे मिथ्या गुरु, देव और धर्म की

श्रद्धा करना उसे 'गृहीत मिथ्यादर्शन' कहते हैं। वह परोपदेस आदि बाह्य कारण के आश्रय से ग्रहण किया जाता है इसलिये 'गृहीत' कहलाता है। अब गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन किया जाता है।।।१२।।

११. '**कुधर्म और गृहीत मिथ्यादर्शन का संक्षिप्त लक्षण।**' कुधर्म और गृहीत मिथ्यादर्शन का - दो बात

रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म;
याकूं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जौ है अज्ञान।।१२।।

गृहीत मिथ्यात्व की बात यहाँ तक है। क्या कहते हैं ? '**राग और द्वेष आदि भावहिंसा (समेत) सहित त्रस और स्थावर के...**' घात की हिंसा... वह द्रव्यहिंसा करे। राग-द्वेषसहित बाहर की त्रसहिंसा, उस सहित की क्रियाएँ '**उन्हें मिथ्याधर्मजानना चाहिए...**' देखो ! यहाँ जरा गड़बड़ नहीं होती। कहते हैं कि जिसमें अकेला राग-द्वेष होता है और बहार अकेले त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती है, उसे धर्ममाना, वह मिथ्यात्व है। भगवान की पूजा में तो एक शुभराग है और उसमें भी एकेन्द्रिय प्राणी (की) अमुक साधारण हिंसा होती है। सावद्यलेश्या हो तो पुण्य बहुत होता है - ऐसा आचार्यों का वचन है। उसे परमार्थ धर्म नहीं मानता।

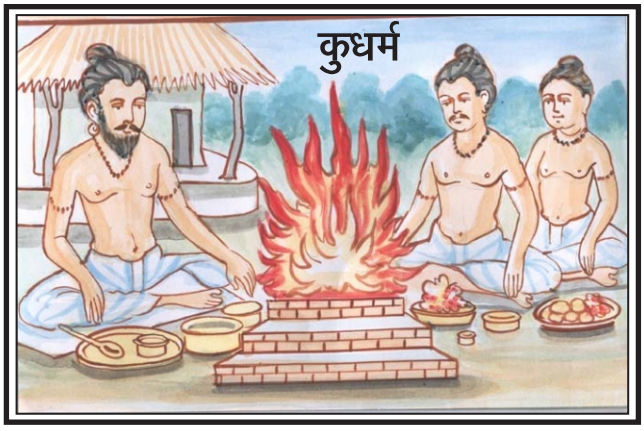

भगवान की पूजा में किञ्चित् स्थावर जीव की, वनस्पति या पानी

के थोड़े जीव हों, घात हो, इसलिए सावद्यलेश्या कहा है, परन्तु शुभभाव हैं, इसलिए उसे पुण्य बन्धन होता है। उसे परमार्थ से वह हिंसा का भाव (नहीं है), अनुबन्ध अहिंसा का है, वीतरागभाव की अनुमोदना का है; और यह तो अकेली हिंसा करता है; परिणाम में राग-द्वेष के भाव (करता है।) बाहर में हिंसा का पार नहीं होता। भगवान के नाम से बाग-बगीचा, फूल तोड़कर पूरे-पूरे जीव मारता है, प्रमाण नहीं रखता, रात्रि में दीपक, रात्रि में फूलवाड़ियाँ, रात्रि में भगवान की पूजा (करता है) और ऐसा मानता है कि मुझे लाभ होता है। - यह सब मिथ्याधर्म है। समझ में आया कुछ ? उसमें धर्म मानना, मिथ्यादर्शन है, गृहीत मिथ्या श्रद्धा है। विवेक चाहिए, देखो न ! पानी की हिंसा। फूल-फल की भी उसकी मर्यादा होती है। समझ में आया ? भाव का ठिकाना नहीं और बहुत हिंसा हो जाए तो उसे धर्म का विवेक नहीं है। यह तो भाई वीतराग का ऐसा मार्ग है। जिसमें राग घटे और बाहर की हिंसा भी घटे, इस प्रकार उसे लेना चाहिए। समझ में आया ?

'**जे क्रिया तिन्हैं जानहू कुधर्म...**' ऐसी जो द्रव्यहिंसा और भावहिंसा सहित.., भावहिंसा सहित है न ? उन क्रियाओं को मिथ्याधर्म जानना। '**उनकी श्रद्धा करने से प्राणी (अशर्म)...**' अशर्म अर्थात् '**दुःख...**' शर्म अर्थात् सुख। '**दुःख पाते हैं।**' समझ में आया ? परिणाम का विचार नहीं। मेरे परिणाम कैसे हैं ? यह कितनी हिंसा होती है ? क्या होता है ? इसका पता नहीं चलता। ऐसे तीव्र रागादिभाव हों, बाह्य हिंसादि - त्रस-स्थावर मरें, चींटी, मकोड़ा मरते हैं, भगवान के नाम पर देखो न कितने कीड़े-मकोड़े मरते हैं। दूध और दहीं सिर पर बहाते हैं... कितने जीव मरते हैं ! उसका विचार नहीं करते और अकेली हिंसा होती है - ऐसे कुधर्म को माने तो मिथ्याश्रद्धा है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

'**इस कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का श्रद्धान करने को गृहीत...**' नया मिथ्यात्व नहीं, अनादि का है वह; उसके साथ यह नया मिथ्यात्व। अनादि का अगृहीत मिथ्यात्व है, वह पहले सातत्त्वों की भूलें कही थी वे, उसके साथ यह दूसरी मिथ्यात्व की श्रद्धा जोड़ दी, इसलिए मिथ्यात्व पुष्ट हुआ, उसे आत्मा का लाभ नहीं हुआ। '**गृहीत मिथ्यादर्शन जानना। अब गृहीत मिथ्याज्ञान (जो है) जिसे कहा जाता है...**' लो ! गृहीत, हाँ ! वह जो अगृहीत मिथ्याज्ञान कहा था, वह दूसरी बात। यह गृहीत मिथ्याज्ञान। अगृहीत मिथ्याज्ञान में भी अदिक पुष्टि करनेवाला। आहा...हा...! समझ में आया ? '**उसका वर्णन सुनो।**'

'**जिस धर्म में मिथ्यात्व तथा रागादिरूप भावहिंसा और त्रस तथा स्थावर जीवों के घातरूप द्रव्यहिंसा को धर्म माना जाता है, उसे कुधर्म कहते हैं। जो जीव उस कुधर्म की श्रद्धा करता है, वह दुःख प्राप्त करता है। ऐसे मिथ्या गुरु-देव और धर्म की श्रद्धा करना, उसे 'गृहीत मिथ्यादर्शन' कहते हैं।**' उसे मिथ्यादेव कौन है ? - उसकी परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा किये बिना माने, वह वीतरागमार्ग में धर्म नहीं कहलाता है। वह परोपदेश आदि बाह्य कारण के आश्रय से ग्रहण किया जाता है। पहले वह आया था, परसों कहा था न ? अगृहीत में। (वह) उपदेशादि बाह्य अवलम्बन द्वारा नवीन नहीं ग्रहण किया है। अज्ञान में ऐसा आया था, पहले शुरूआत में। यहाँ परोपदेश पढ़ने से, सुनने से, देखने से, कहने से ग्रहण किया गया है, इसलिए उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहा जाता है। '**अब, गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन...**' करेंगे। यह तेरहवीं गाथा। बारह हुई न ? बारह हुई। बारह तक गृहीत मिथ्यादर्शन, अगृहीत (मिथ्यात्व को) पुष्टि करनेवाले की बात की। अब अगृहीत (मिथ्या)ज्ञान को पुष्टि देनेवाले मिथ्याज्ञान की बात करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)